Parmarth
Saar.
परमार्थ सार
6576
6576
S181.4
21854
Acc 6576

परमार्थ सार ॥

श्रीभगवान् शंकाराचार्य रचित

जिसमें

परब्रह्मपरमेश्वर ध्यान विषयक अत्युत्तम मार्ग वर्णित है डिपुटी कमश्नरी लखनऊ के सरदफतर बाबु काशी-नाथ चटरजी ने विद्वज्जनों के उपकारार्थ पण्डित केवलदीन से टीका कराके प्रकाश किया

स्थान लखनऊ

श्रीमुंशीनवलकिशोरजी के यन्त्रालय में छपा ॥

फरवरी सन् १८७३ ई० ॥

श्रीगणेशायनमः ॥

परमार्थसारका भूमिका ॥

प्रकट होकि सम्पूर्ण मनुष्य जो अज्ञानांधकार में पतित होकर अति निकटप्राप्त आल्हाद स्वरूप सर्व सारांश यथार्थ पदार्थ के विचार नेत्रसे दृश्यकर प्राप्त न होकर नाना प्रकार दुःखसार संसार में मोहको प्राप्त होके चित्त की उद्विग्नता वनिरानन्दता लाभ करते हैं तिनके उपकारार्थ चटरजी श्री बाबू काशीनाथ जीने श्रीभगवान् शंकराचार्य कृत परमार्थसार ग्रन्थ पण्डित केवलदीन से भाषा टीका कराके। मुंशीनवलकिशोरके यन्त्रालय में छपवाया, कि इसे पढ़ कर सबको ज्ञानलाभ होय ॥

श्री काशीनाथ चटरजी सरदफ्तर
डिपुटी कमिश्नरी
लखनऊ

इति

श्रीगणेशायनमः ॥

परमार्थसार ॥

श्लो०—परंपरस्याःप्रकृतेरनादिमेकन्निविष्टंबहुधागुहासु ।
सर्वालयंसर्वचराचरस्थंत्वामेवविष्णुंशरणंप्रपद्ये ॥ १ ॥

श्रीरस्तु पराप्रकृति जोमाया तेहितेपरे औएक सजातीय विजातीय स्वगत भेद रहित औ अनादि औ गुहाजो देव मनुष्यादि देह तिन विषे बहुधा कहे न्यूनाधिक भावकरिके स्थितहै टिकाहै सर्वालयकहे सबका स्थान है औ सब चराचर विषे स्थितहै ऐसेजो तुम विष्णु हो तिनके मैं शरण को प्राप्तहौं ॥ १ ॥

आत्माम्बुराशौनिखिलोपिलोकोमग्नोपिनाचामतिनेचतेच ।
आश्चर्यमेतन्मृगतृष्णिकाभेभवाम्बुराशौरमतेक्षपैव ॥ २ ॥

समुद्र तुल्य आत्मा विषे सब लोक टिका है नतो स्वादुलेइ न देखे आश्चर्य कीबातहै झूठे संसारमे वृथा रमि रहाहै ॥ २ ॥

गर्भवासजन्ममरणविप्रयोगदुःखाब्धौ ।
जगदालोक्यनिमग्नं प्राहगुरुं प्रांजलिःशिष्यः ॥ ३ ॥

गर्भवास जन्म बुढ़ापा मरना बिछुरना ए दुःख समुद्रविषे बूड़ा जगतको देखिके शिष्य हाथ जोरिके गुरु से बोला ॥ ३ ॥

त्वंसांगवेदवेत्ताभेत्तासंशयगणस्यसत्यवक्ता ।
संसारार्णवतरणेप्रश्नंपृच्छाम्यहंभगवन् ॥ ४ ॥

हे गुरो तुम सांगवेद को जानतेहो औसंदेहके दूरि करनेवाले हौसत्य बोलतेहो सोसंसार समुद्रसे छूटनेका उपाय पूछता हौं सो कहिये ॥ ४ ॥

दोषैःकिन्संसारेसंसरतःकस्यकेनसंबंधः ।
कर्मशुभाशुभफलान्यनुभवतिगतागतैरिहकः ॥ ५ ॥

वहामारी संसार तिसमें जन्म मरण कोपायके जो घूमिरहेहैं तिनमें को हिके काके केहिका संबंधहै सो कर्म केपुण्य पाप फलको वह संसार मे चलि फिरिके कोन भोगकर्ता है ॥ ५ ॥

कर्मगुणजालबद्धोजीवस्संसरतिकोशकारइव ।
मोहांधकारगहनात्तस्यकथंबंधनान्मोचः ॥ ६ ॥

कर्म रूप सूतरीके जालमे जोवबंधा हैसो संसार मेंसुखदुःख भोगकरता है जैसे कुसहरो का कीडा मकान बनायके बंधिजाता हैसोमोह अंधकार रूप बंधनसे कैसे छूटे सो कहो ॥ ६ ॥

गुणकर्मविभागज्ञोधर्माधर्मैर्निबंधकोभवतः ।
इतिगदितंपूर्ववाक्यैःप्रकृतिंपुरुषंचमेब्रूहि ॥ ७ ॥

जोकोई गुणकर्म केविभाग को जानताहै तेहिका धर्म अधर्म बंधन नहीं करते हैं यह बात महात्मा लोग कहिगये हैं सो मायाव जीवका बिभाग कहो ॥ ७ ॥

चित्याधारोभगवान्पृष्टःशिष्येणतंसहोवाच ।
विदुषामप्यतिगहनंवक्तव्यमिदंशृणुतथापित्वं ॥ ८ ॥

ऐसा शिष्यका वचन सुनिके भगवान् शेषजी शिष्य सोंबोले हेशिष्ययह बात विद्वानों के जानने योग्य नहींहै तथापि तुम सुनो मेंकहता हूं ॥ ८ ॥

सत्यमिवजगदसत्यंमूलप्रकृतेरिदंकृतंयेन ।
तंप्रणिपत्योपेन्द्रंवक्ष्येपरमार्थसारमिदम् ॥ ९ ॥

माया का किया हुवा यह असत्य संसार कोजिसने सत्य कर दिया ऐसे उपेन्द्र अर्थात् विष्णु को प्रणाम करके यह मुख्य सारांश वर्णन करता हूं ॥

अव्यक्ताद्यण्डमभूदण्डाद्ब्रह्माततःप्रजासर्गः ।
मायामयीप्रकृतिःसंचीयतइयंपुनःक्रमशः ॥ १० ॥

मायासे अण्ड उत्पन्न भया अण्डसेब्रह्मा उत्पन्न भये तिनसे प्रजाउत्पन्न होते भये फिरि मायायह सीणहोजाती है यही क्रमसदा चलाजाता है ॥ १० ॥

मायामयोप्यचेतोगुणकरणगणःकरोतिकर्माणि ।
तदधिष्ठातादेहीसचेतनोऽनकरोतिकिंचिदपि ॥ ११ ॥

मायारचित गुणजो सत्वादिक तिन करिके युक्तजो इंद्रियां हैते हैं अचेतनयेकर्म करती हैं औइंद्रियों का मालिक जीव सो चेतन्य भी है कुछ नहीं करता है ॥ ११ ॥

यद्वदचेतनमपिसन्निकटस्थेभ्रामकेभ्रमतिलोहं ।
तद्वत्करणसमूहश्चेष्टतेचिदधिष्ठितेदेहे ॥ १२ ॥

ऐसे लोहा जड है अयचुंबक पत्थर लोहा के समीप जाता हैतब लोहा चलता है इसी तरह से चेतन्य युक्त देह विषे इंद्रियां सब काम करती हैं ॥ १२ ॥

यद्वत्सवितर्युदितेकरोतिकर्माणिजीवलोकोयं ।
नचतानिकरोतिरविर्नकारयतितद्वदात्मापि ॥ १३ ॥

ऐसे सूर्य के उदय विषे सब जीव काम करते हैं सूर्य कुछ काम नहीं करते न करवाते हैं ऐसे ही अत्मा कुछ नहीं करता इन्द्रियां काम करि रही हैं ॥ १३ ॥

मनसोहंकारविमूर्छितस्यचैतन्यविबोधितस्येह ।
पुरुषाभिमानसुखदुःखभावनाभवतिमूढस्य ॥ १४ ॥

अहंकार करि मूर्छित चेत्यन्य करि जगाया गया अज्ञानो मन को पुरषाभिमान रूप सुख दुःख भावना होती है ॥ १४ ॥

कर्ताभोक्ताद्रष्टास्मिकर्मणामुत्तमादीनां ।
इतितत्स्वभावविमलोऽभिमन्यतेसर्वगोप्यात्मा ॥ १५ ॥

स्वभावे ते निर्म्मल औ सब के विषे बर्त्त मान ऐसाजो आत्मा पुण्य पाप रूपजो कर्म तिनका कर्ता वि भोक्ता व देखैया मैहों यह अपना को मानता है ॥ १५ ॥

नानाविधवस्तूनांवर्णान्धत्तेयथाऽमलः ।
स्फटिकःतद्वदुपाधेर्गुणभावितस्वभावंविभुर्धत्ते ॥ १६ ॥

ऐसे सब काल मेस्फटिक पत्थर सुपेदे है औ नाना प्रकार के नील पीतादि रंगको धारण कर्त्ता है तैसे ही शुद्ध आत्मा गुण युक्त जो उपाधि देह है तिनके भावको धारण करि लेता है ॥ १६ ॥

गच्छतिगच्छतिसलिलेदिनकरविंवस्थितेस्थितेयाति ।
अंतःकरणेगच्छतिगच्छत्यात्मापितद्वदिह ॥ १७ ॥

जैसे जलके चलते हुये सूर्य का विंब चलताहै जलके स्थित होते स्थिति को प्राप्त होता है तैसेही आत्मा जोजीव सो मनके चलते हुये चलताहै मनके स्थिर भये स्थित होही जाता है ॥ १७ ॥

राहुरदृश्योपियथाशशिविंवस्थःप्रकाशतेजगति ।
सर्वगतोपितथात्माबुद्धिस्थोपिदृश्यतामेति ॥ १८ ॥

ऐसे राहु नहीं देखि परता है पै चन्द्रमा के विंबमें जाय के जगत मे देखि परता है तैसेही आत्मा सर्व गत है बुद्धि बिषै स्थित होता है तब देखि परता है ॥ १८ ॥

सर्वगतंतन्निरूपमद्वैतंतच्चचेतसागम्यं ।
यद्बुद्धिगतंब्रह्मोपलक्ष्यतेशिष्यवेद्यंतत् ॥ १९ ॥

सो सर्व्व गत आत्मा चित्त करिके जाना जाता है कैसा जिसका दूसरा नहीं औ उपमा नहीं है जो बुद्धि में गत आत्मा सोई ब्रह्म जानो हे शिष्य ॥ १९ ॥

आदर्शेमलरहितेयद्वद्रूपंविचिन्वतेलोकः ।
आलोकयतितथात्माविशुद्धबुद्धौस्वमात्मानम् ॥ २० ॥

ऐसे निर्मल सीसा विषै सब लोग अपना रूप देखते हैं इसी तरह यह आत्मा जीव विशुद्ध बुद्धि विषै अपने शुद्ध रूपको देखता है ॥ २० ॥

बुद्धिमनोऽहंकारास्तन्मात्रेन्द्रियगणाःसम्भूतगणाः ।
संसारसर्गपरिरक्षणक्षयःप्राकृतास्त्याज्याः ॥ २१ ॥

बुद्धि मन अहंकार शब्दादिक विषय इन्द्रियां पंच महा भूत संसार की उत्पत्ति रक्षा प्रलय एसब माया रचित हैं इसी से त्याज्य हैं ॥ २१ ॥

धर्माऽधर्मौसुखदुःखकल्पनास्वर्गनरकवासश्च ।
उत्पत्तिनिधनवर्णाश्रमाःनसंतीहपरमार्थे ॥ २२ ॥

परमात्मा कोविषे धर्म अधर्म सुख दुःख स्वर्ग नरक वास उत्पत्ति नाश वर्णा श्रामयेकोई नहीं हैं ॥ २१ ॥

मृगतृष्णायामुदकंशुक्तौरजतंभुजगोरज्ज्वां ।
तैमिरिकचन्द्रयुगवद्भ्रांतमखिलंजगद्रूपं ॥ २२ ॥

यह जगत् सब एक भ्रम रूपहै जैसे मृगतृष्णामे जल जैसे सूतीके विषै चांदी रज्जुविषै सर्प तिमिरीके जैसे दो चन्द्रमा येसब मिथ्या हैं ऐसे आत्मा विषै जगत् भ्रांतिमात्रैं है ॥ २२ ॥

यद्वद्दिनकरएकोविभातिसलिलाशयेषुसर्वेषु ।
तद्वत्सकलोपाधिष्ववस्थितोभातिपरमात्मा ॥ २३ ॥

ऐसे एक सूर्य जितने जलपात्र हैं तिनविषै सबमे प्रतिबिंब होताहै तैसे परमात्मा जेतनोदेह हैं तिन सब विषै स्थित हैं ॥ २३ ॥

खमिवघटादिष्वंतर्बहिःस्थितंब्रह्मसर्वपिंडेषु ।
देहोहमित्यात्मनिबुद्धिःसंसारबंधाय ॥ २४ ॥

ऐसे घटादिकों विषै व घटादिकों के बाहेर आकाश सबमेंहै ऐसेही सब देहन विषै ब्रह्म व्याप्त है आत्मा के विषै मैं देहहों यह बुद्धि बंधन को करती है ॥ २४ ॥

सर्वविकल्पहीनःशुद्धोबुद्धोऽजरोऽमरःशान्तः ।
अमलोऽसकृद्विभातश्चेतनआत्माखवद्व्यापी ॥ २५ ॥

जिसमे कोई कल्पना नही है शुद्धहै ज्ञानरूप है अजर अमर है शांत है मलरहित है सदा प्रकाशित है ऐसा चेतन्य आत्मा आकाशकी नाईं सब मे व्याप्त है ॥ २५ ॥

रसफाणितशर्करिकागुडखंडाविकृतयोयथैवेक्षोः ।
तद्वदवस्थाभेदाःपरमात्मन्येवबहुरूपाः ॥ २६ ॥

जैसे ऊखके रस व राब व शक्कर गुड़ मिश्री ए अनेक विकृतिहैं ऐसेही परमात्माविषै बहुत अवस्था भेद हैं ॥ २६ ॥

विज्ञानांतर्यामीप्राणविराटदेहजातिपिण्डांताः ।
व्यवहारास्तस्यात्मनएतेऽवस्थाविशेषाःस्युः ॥ २७ ॥

ज्ञान, अन्तर्यामी, प्राण, विराट, देह, जाति, पिण्ड, ए व्यवहार सब आत्माकी अवस्था होतीहैं ॥ २७ ॥

रज्वान्नास्तिभुजंगःसर्पभयंभवतिइेतुनाकेन ।
तद्वद्द्वैतविकल्पभ्रांतिरविद्यानसत्येयम् ॥ २८ ॥

रज्जुमेसर्प है नहीं सर्प से भयकौन कारण से होतीहै इसीतरह द्वैत विकल्प भ्रमरूविद्या है द्वैत सत्य नहीं है ॥ २८ ॥

एतदंधकारंयदनात्मन्यात्मभावनाभ्रांत्या ।
नविंदंतिवासुदेवंसर्वात्मानंनरामूढाः ॥ २९ ॥

भ्रमतेजो देहविषे आत्म मानते हैं यह अंधकार है मूढ अज्ञानी मनुष्य इसीसे सर्वात्मा वासुदेवको नहीं पावते हैं ॥ २९ ॥

प्राणाद्यनंतभेदैरात्मानंसंवितत्येन्द्रजालमिव ।
संहरतिवासुदेवःस्वविभूत्याक्रीड़मानइव ॥ ३० ॥

जैसा इन्द्रजाली बहुततरह से इन्द्रजालकी माया देखावताहै तैसे भगवान् प्राण आदि अनेक भेद करिके आत्मा को फैलाइ देताहै फिरि अपनी माया करिके संहार करिलेता है जैसे बालक खेलते हैं सबचीज फैलाय के फिरि समेटि धरते हैं । ३० ॥

त्रिभिस्त्वविश्वतैजसप्राज्ञैस्तैरादिमध्यनिधनाख्यैः ।
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तैर्भ्रमभूतैराच्छादितंतुरीयम् ॥ ३१ ॥

तुरीयजो सब अवस्था में एक रूप रहता है भगवान् सोई विश्व तैजस प्राज्ञभी आदि मध्य अन्त जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति ए भ्रमभूतजो अवस्था हैं तिन करिके मूंदा है । ३१ ॥

मोहयतीवात्मानंस्वमाययाद्वैतरूपयादेवः ।
उपलभ्यतेस्वयमेवगुहागतंपुरुषमात्मानम् ॥ ३२ ॥

ईश्वर द्वैत रूपजो अपनी मायाहै तेहि करिके अपना को ऐसा मोहित करिदेताहै पंचकोश मयगुहा विषे प्राप्त आत्माको अपनेसे प्राप्त होइ जाता इसीप्रकार ईश्वर अपनेही आधीन है किसीके वशनहो है ॥ ३२ ॥

ज्वलनाद्धूमोद्भूतिरिहविविधाकृतिरंबरेयथा ।
तद्वद्विष्णोस्सृष्टिस्स्वमाययाद्वैतविस्तराभवति ॥ ३३ ॥

जैसे अग्निसे धुंवा उत्पन्न भया आकाशविषे जायके नानारूप होइजाता तैसेही विष्णु से उत्पन्न सृष्टि माया करिके द्वैतसे बडे विस्तार युक्त होइ जातीहै ॥ ३३ ॥

शांतइवमनसिशांतेहृष्टेहृष्टइवमूढइवमूढे ।
व्यवहारस्थःसपुनःपरमार्थतईश्वरोभवति ॥ ३४ ॥

ईश्वरपरमार्थमे स्थित होयके ईश्वरहै व्यवहार में स्थित होइके व्यवहार ऐसा भाषित होताहै सोई वर्णन करताहूं जबमन शांतहोता है तबशांत सा मालूम होताहै जबमन प्रसन्न होता है तब प्रसन्न मालूम होता है जब मन मूढ़ होता है तबमूढ मालूम होताहै फिर ईश्वर का ईश्वर ॥ ३४ ॥

जलधरधूमरजोभिर्नमलिनीक्रियतेयथागगनतलम् ।
तद्वत्प्रकृतिविकारैरपरामृष्टःपरःपुरुषः ॥ ३५ ॥

जैसे मेघ व धुवां व धूरिइन करिके आकाशयुक्त भी मलिन नहीहोता योंही परम पुरुष ईश्वर मायाके गुणन करिके लिप्त नहीं होताहै ॥ ३५ ॥

एकस्मिन्नपिचघटेधूमादिमलाद्वृतेचघटाःशेषाः ।
नभवन्तिमलोपेतायद्वज्जीवोतद्वदिह ॥ ३६ ॥

जैसे एकघड़ा धूमके मैलसे मैलाभया तब सबघट मैल नहींहोते योंही जीव एक देहमे दुःखादि युक्त होताहै सबते दुःखी नहीहोता । ३६ ।

देहेंद्रियेषुनियताःकर्म्मगुणाकुर्वतेस्वभोगार्थम् ।
नाहंकर्तानममेतिजानतःकर्मनैवबध्नाति ॥ ३७ ॥

गुण सत्वादिक देह इन्द्रियों में सदा बसतेहैं जीवके भोगार्थ कर्मकरते हैं मे नहो करता हूं मेरे कर्म नहीं हैं यह जानने वालेको कर्म नहीं बांधि सकतेहै ॥ ३७ ॥

अन्यशरीरेणकृतंकर्मभवेद्येनदेहउत्पन्नः ।
तदवश्यंभोक्तव्यंभोगादेवक्षयोस्यनिर्दिष्टः ॥ ३८ ॥

पूर्वजन्मके शरीर करिके कर्म कियेगये जिनकर्मोसे देहउत्पन्नभई तीन कर्म अवश्य भोगकिया चाहिये वे कर्म भोगनेसे नाशहोते है ॥ ३८ ॥

प्रागज्ञानोपचितंयत्कर्मज्ञानाग्निशिखाभिरुद्धं ॥
बीजमिवदहनदग्धंजन्मसमर्थंनतद्भवति ॥ ३९ ॥

पहिले बिना जाने जो कर्म किया फिर ज्ञान उत्पन्न भया तौ ज्ञानरूप अग्निमे जलिजाते फिरि जन्मनही दै सक्ते हैं जैसे अग्निमे जलाबीज नहीं जमता है । ३९ ।

ज्ञानोत्पत्तेरूर्ध्वं क्रियमाणं कर्म यत्तदपि नाम ।
न श्लिष्यति कर्तारं पुष्करपर्णं यथा वारि ॥ ४० ॥

ज्ञानोत्पत्तिके उपरांत ज्ञानी जो कुछ कर्म कर्ता है तेहि करिके लिप्त नहीं होता जैसे जल कमलके पत्ते में नही लपटता है ॥ ४० ॥

वाग्देहमानसैरिह कर्मचयः क्रियत इति बिबुधाः प्राज्ञः ।
एकोऽपि नाहमेषां कर्ता तत्कर्मणा सक्तिः ॥ ४१ ॥

पण्डित कहते हैं वाणीमन देह ये कर्म करते हैं ज्ञानी मानता है मै एक इन कर्मोंका नहीकर्ता हूं ॥ ४१ ॥

कर्मफलबीजनाशाज्जन्मविनाशो न चात्र सन्देहः ।
बुध्वैवमपागततमः सवितेव विभाति भारूपः ॥ ४२ ॥

जब कर्मफलके बीजको नाशभया तब जन्मको नाशकहै जन्म नहींहोता है यहबात संदेह रहित है जो यह जानताहै सो सदा तेजरूप सूर्य की भांति प्रकाशित रहताहै ॥ ४२ ॥

यद्वद्दिषीकातूलं पवनोद्धूतं दशदिशो याति ।
ब्रह्मणि तद्वज्ज्ञाते तद्वै कर्माणि तत्वविदः ॥ ४३ ॥

जैसे मूंजको धुवां पवनके वेगसे दशोदिशाको प्राप्त होजाता है ऐसेही ब्रह्मज्ञान पैदाभये तत्ववेत्ताके कर्म उडिजातेहैं ॥ ४३ ॥

क्षीराद्धृतमाज्यं क्षिप्तं यद्वन्न पूर्ववत्तस्मिन् ।
प्रकृतिगुणेभ्यस्तद्वत् पृथक्कृतस्तेषु नात्मा ॥ ४४ ॥

दूधमे घृतकाढिलिया फिरि दूधमे छोड़नेसे नहीं दूधमे मिलताहै तैसेही चेतन्य मायाके गुणोंमे जब अलगभया फिरि जीवत्वको नहीं प्राप्तहोताहै ॥ ४४ ॥

गुणमयमायागहनं निर्धूय यथा तमः सहस्रांशुः ।
बाह्याभ्यंतरचारी सैन्धवघनवद्भवेत्पुरुषः ॥ ४५ ॥

जैसे सूर्य अंधकार को दूरि करिके सबते प्रकाश करते हैं तैसेही पुरुष माया के गुणके वनको दूरि करिके बाहेर भीतर विचरता है जैसे सिंधुका पहाड़निर्मल होता है तैसे निर्मल रहिता है ऐसा होइ जाता है ॥ ४५ ॥

यद्वद्देहावयवा स्युर्देवतस्था विकारजातानि ।
तद्वत्स्थावरजंगममद्वैतं द्वैतवद्भाति ॥ ४६ ॥

जैसे माटी से देह अंगसब घटादिको है सोपृथक् मालूम होते हैं तैसेही स्थावर जंगम हैं अद्वैत द्वैत सो भासित होता है ॥ ४६ ॥

एकस्मात्क्षेत्रज्ञादीश्वरः क्षेत्रज्ञजातयो जाताः ।
लोहगिलादिव दहनात्समंततो विस्फुलिंगगणाः ॥ ४७ ॥

एक ईश्वर क्षेत्रज्ञ से बहुत क्षेत्रज्ञ की जाती जीव रूप उत्पन्न होती हैं जैसे लोहगलावते जोअग्नि है तिनसे बहुत चिनगारी निकलती हैं ॥ ४७ ॥

तेगुणसंगमदोषाबद्धा इव धान्यजातयः स्तुषैः ।
जन्मलभंते तावद्यावन्न ज्ञानाग्निना दग्धाः ॥ ४८ ॥

तेक्षेत्रज्ञ जाती गुण के साथ दोष होनेसे बंधे हैं तबलगे जन्म मरणको प्राप्त होते हैं जब तक ज्ञान अग्नि करिके नहीं जलते जैसे चाउर जवादिक भूसी से बंधे हैं तब तक जमने हैं भूसी अलग भये नहीं जमते ॥ ४८ ॥

त्रिगुणा चैतन्यात्मनि सर्वगतेऽवस्थिताखिलाधारे ।
कुरुते दृष्टिमविद्या सर्वं नस्पृशते न या नात्मा ॥ ४९ ॥

सबमें स्थित सबका आधार भूत आत्मा जो चैतन्य रूपतामे स्थित त्रिगुणात्मिका अविद्या रूपा माया दृष्टिको करती है परन्तु आत्मा को स्पर्श नहीं करसक्ती है ॥ ४९ ॥

रज्ज्वां भुजंग हेतौ प्रभवविनाशौ यथा न स्तः ।
जगदुत्पत्तिविनाशौ न तत्कारणेऽस्त तद्वदिह ॥ ५० ॥

जिस उत्पत्ति बिनाशको कारण सर्प है वह उत्पत्ति विनाश रज्जुमे नहीं होता है ऐसेही जगत को उत्पति विनाश जगत्कारण ईश्वर विषे नही होते हैं ॥ ५० ॥

जन्मविनाशनगमनागमनमलैः संगविवर्जितो नित्यं ।
आकाशवद्घटादिषु सर्वात्मा सर्वतोऽपेतः ॥ ५१ ॥

सबसे अलग सबका आत्मा जन्म विनाश गमन आगम रूप मलों करिके नित्यही रहितहै जैसे घटादि वस्तु विषे आकाश सबमें सबसे अलगहै ॥ ५१ ॥

कर्मशुभाशुभजनितैः सुखदुःखैर्योगो भवत्युपाधीनां ।
तत्संसर्गादिव संस्कारसंगाद्तस्करवत् ॥ ५२ ॥

पुण्य पाप कर्मों से उत्पन्न सुख दुःख जिन करिके देहादिकों को संयोग

होता है तिन देहादिकों के संसर्ग से आत्मा भी बद्ध होताहै वस्तु से बद्ध नहीं है जैसे चोर चोरी किया बांधा गया चोरके संगी माता पिता चोरी नहीं को चोर बांधे जाते हैं । ५२ ।

देहगुणकारणगोचरसंगःपुरुषस्ययावदिहभवति ।
तावन्मायापाशैःसंसारेरुद्ध इवाभाति ॥ ५३ ॥

जबतक जीवको देह इन्द्रिय विषय का साथ है तब तक संसार विषे माया की फंसरी करिके बंधा ऐसा मालूम होता है ॥ ५३ ॥

मातृपितृपुत्रबान्धवधनभोगविभागसंमूढः ।
जन्मजरामरणमयेचक्रइवभ्राम्यतेजंतुः ॥ ५४ ॥

माता पिता पुत्र बंधु धन भोगमें संयुक्त जीव जन्म मरण जरा रूप चक्र मेंभ्रमा ऐसा घूमता है । ५४ ॥

लोकव्यवहारक्ताविद्याविद्यामुपासतेमूढाः ।
तेजननमरणधर्माणोह्यन्धतमएत्यखिद्यंते ॥ ५५ ॥

जो अज्ञानी जीव लोकव्यवहार रूप अज्ञान में फंसे रहते हैं तिनका जन्म मरण नहीं छूटता वे अन्धनरकमें प्राप्त होके दुःखी होते हैं ॥ ५५ ।

हिमफेनबुद्बुदाइवजलस्यधूमोऽग्नेर्यथावन्हेः ।
तद्वत्स्वरूपभूतामायैषाकीर्तिताविष्णोः ॥ ५६ ॥

जैसे जलमें सीतलता व फेना व बुल्ला होतेहैं वैसे अग्नि में धुंवा होता है तैसेही विष्णु की माया कही जातीहै ॥ ५६ ॥

एवंद्वैतविकल्पांभ्रमस्वरूपांविमोहिनींमायां ।
उत्सृज्यसकलनिष्कलमद्वैतंभावयेद्ब्रह्म ॥ ५७ ॥

ऐसे द्वैत की कल्पना भ्रमरूप औ सब को मोहावती माया को छोड़ि के संपूर्ण कलाहीन अद्वैत ब्रह्म की भावना करै । ५७ ।

यद्वत्सलिलेसलिलंक्षीरेक्षीरंसमीरणेवायुः ।
तद्वद्ब्रह्मणिभावनयातन्मयत्वमुपयाति । ५८ ॥

जैसे जलमें जल मिलि जाताहै दूध में दूध मिलि जाताहै वायु में वायु मिलिजातीहै तैसेही जीव भक्ति करिके ब्रह्मरूप होय जाता है । ५८ ।

इत्थंद्वैतसमूहेभावनयाब्रह्मभावमुपासते ।
कोमोहःकश्शोकस्सर्वंब्रह्मावलोकयतः ॥ ५९ ॥

इसी तरह से संसार विषे भक्ति करि के ब्रह्म की उपासना करते तिन को मोह व शोक नहीं होता वेसब ब्रह्म मय देखते हैं ॥ ५९ ॥

विगतोपाधिःस्फटिकःस्वप्रभयाभातिनिर्मलोयद्वत् ।
चिद्दीपःस्वप्रभयातथाविभातीहनिरुपाधिः ॥ ६० ॥

जैसे स्फटिक पत्थर का रंग छुडाइ डारै तो अपने तेज करिके निर्मल शोभा को प्राप्त होता है तैसेही चैतन्य दीप उपाधि रहित होने से अपने तेज करिके प्रकाशित होता है । ६० ॥

गुणकरणगणशरीरप्राणैस्तन्माचजातसुखदुःखैः ।
अपरास्पृष्टाव्यापीचिद्रूपोहंसदाविमलः ॥ ६१ ॥

गुण सत्वादि इंद्रिय गण श्रोत्रादि शरीर प्राण इनसे उत्पन्न सुख दुःख से रहित व्यापक मल रहित चैतन्य रूप मै सदा हौं ऐसी मन में भावना राखै ॥ ६१ ।

द्रष्टाश्रोताघ्रातास्पर्शयितारसयितागृहीताच ।
देहीदेहेन्द्रियधीविवर्जितःस्यान्नकर्तासौ ॥ ६२ ॥

देखता है सुनता है सुगन्ध को लेता है स्पर्श करता है रस को जानता है ग्राहक है ऐसा जो जीव है सो देहइन्द्रियसे अलग है कुछ नहीं करता है ॥ ६२ ॥

एकोनैकश्चावस्थितोहमैश्वर्य्ययोगतोव्याप्तः ।
व्याप्याकाशवदखिलंनकश्चिदत्रास्तिसन्देहः ॥ ६३ ॥

एक है औ आकाश की नाईं सबमें स्थित है अहमैश्वर्य करिके सर्वत्र व्याप्त है इसमे कोई संदेह नहीं है ॥ ६३ ॥

आत्मैवेदंसर्वंनिष्कलसकलंयदैवभावयति ।
मोहगहनाद्विमुक्तस्तदैवपरमेश्वरोभवति ॥ ६४

निष्कल कला रहित औ कला सहित जो कुछ है सो सब आत्माही है जो कुछ देखि सुनि पड़ताहै यहबात जब २ भावना करै तब मोहसे छूटिजाता है परमेश्वर हो जाता है । ६४ ॥

सिद्धान्तागमतर्कादिंषुखसंतियेवह्नागांधाः ।
अतुमेदाक्तेर्षासर्वात्मवादिंषिवा ॥ ६५ ॥

सिद्धांत शास्त्र तर्कादिकों के बिषे गेरागांध होइ के भ्रमत हैं तिनकी इव बिषे आत्मशादी जो बुद्धि है तेहि करिके हमपमन्न होते हैं ॥ ६५ ॥

सर्वाकारोभगवानुपास्ततेयेनयेनभावेन ।
तंतंभावंभूत्वाचिन्तामणिवत्समभ्येति ॥ ६६ ॥

सर्व स्वरूप भगवान है मनुष्य जिस २ रूप की भावना करते हैं यो उपासना करते हैं सोई सोई रूप धारण करिके भगवान प्राप्त होते हैं जैसे चिन्ता मणि पत्थर ॥ ६६ ॥

नारायणमात्मानंज्ञात्वासर्गस्थितिप्रलयहेतुम् ।
सर्वज्ञःसर्वभूतःसर्वःसर्वेश्वरोभवति ॥ ६७ ॥

जब जीव अपने को सृष्टि पालन संहार कर्ता जो नारायण तन्मय जानता है तब सर्वज्ञ हो जाता है सर्व स्वरूप सबमें मिला परमेश्वर को सबमें देखता है ॥ ६७ ॥

आत्मज्ञस्तरतिशुचंयस्मादिद्वान्नबिभेतिकुतश्चित् ।
मृत्योरपिमरणभयंनभवत्यन्यत्कुतस्तस्य ॥ ६८ ॥

जिसको देखिके किसीको भय न उत्पन्न होय ऐसा आत्मज्ञ बिद्वान् कभी शोचको नहीं प्राप्त होता घोर मरण से भय नहीं होतो घोर भय कैसे होय ॥ ६८ ॥

क्षयवृद्धिवद्घातकवधनमोक्षैर्विवर्जितंनित्यं ।
परमार्थतत्वमेकंह्यतोऽन्यत्तदनृतंसर्वम् ॥ ६९ ॥

जिसका क्षय औ वृद्धि १ औ वद्ध औ घातक २ औ बन्धमोक्ष ३ कोई नहीं है औ नित्य है ऐसा परमार्थ तत्व एहै मुख्य तिसते अन्य पदार्थ सब झूठे हैं ॥ ६९ ॥

एवंप्रकृतिपुरुषंविज्ञायनिरस्तकल्पनाजालः ।
आत्मारामःप्रशमसमाश्रितःकेवलोभवति ॥ ७० ॥

यहि प्रकार ते माया व ईश्वर को जानने से कल्पना को जाल छूटि जाता है आत्माराम होयके शांति को प्राप्त निर्विकार होइ जाता है ७० ॥

नडकदलिवेणुगणानश्यंतियथास्वपुष्पमासाद्य ।
तद्वत्स्वभावभूताःस्वभावनांप्राप्यनश्यंति ॥ ७१ ॥

रामशर केला बांस ए जब फूले तब नाश होजाते हैं तैसेही जीव जब अपने स्वरूप को प्राप्त होते हैं तब मुक्त हो जाते हैं स्वभाव नाश होइ जाते हैं अपने स्वरूप को प्राप्त होइके ॥ ७१ ॥

भिन्नेज्ञानग्रंथौछिन्नेसंशयगणेशुभाशुभेक्षीणे ।
दग्धेचजन्मवीजेपरमात्मानंहरिंयाति ॥ ७२ ॥

जब जीवकी अज्ञान की गांठि छूटिजाती है संदेह नाश होइ जाता है पाप पुण्य क्षीण होइ जाते हैं कर्म रूप वीज जरिजाता है तब वह जीव परमात्मा को प्राप्त होइ जाता है ॥ ७२ ॥

मोक्षस्यनैवकिंचिद्धामास्तिनचापिगमनमन्यच ।
अज्ञानमयग्रंथेर्भेदोयस्तंविदुर्मोक्षं ॥ ७३ ॥

मोक्षका कोई घर नहीं है और न कहीं और ठौर में जाना है जो अज्ञान की ग्रंथि का छूटना है सोई मोक्ष है यह बात महात्मा कहि गये हैं ॥ ७३ ॥

बुध्वैवमसत्यमिदंविष्णोर्मायात्मकंजगद्रूपं ।
विगतद्वंद्वोपाधिर्भोगासंगोभवेच्छांतः ॥ ७४ ॥

विष्णु की माया मय ऐसा यह जगत् रूप झूठा जानि के द्वैत उपाधि छोड़ि देय भोगमें संग न करै तो शाँत चित्त होय ॥ ७४ ॥

बुध्वाविभक्तांप्रकृतिंपुरुषःसंसारमध्यगोभवति ।
निर्मुक्तःसर्वकर्मभिरंबुजपत्रंयथासलिलैः ॥ ७५ ॥

संसार के बीच में टिका जो जीव हैं सो माया को अपना से अलग जाने तो सब कर्मों से छूटि जाइ जैसे कमलका पत्ता जलमें रहता है जल करिके लिप्त नहीं होता है ॥ ७५ ॥

त्यक्त्वाकर्मविकल्पानात्मस्थंमन:केवलंकृत्वा ।
दग्धेन्धनइववह्नि:सर्वचात्माभवेच्छान्त: ॥ ७६ ॥

जब आत्मा विकल्पों को छोड़िके मनको आत्मा विषे लगाता है तब सब ते शांत रूप होइ जाता है जैसे ईंधन जरि गया तब अग्नि शांत होइ जाता है ॥ ७६ ॥

यदन्नंयद्यातद्यासन्नीतो येनकेनचिच्छान्त: ।
यत्रक्वचनशायीविमुच्यतेसर्वभूतात्मा ॥ ७७ ॥

जो पाया से भोजन करलिया जो कोई ल्यवाइ गया तहां चला गया जहां पाया तहां सोयरहा ऐसा शांतरूप सबजीवन को आत्मा हो जाता है संसारसे छूटिजाता है ॥ ७७ ॥

हयमेधशतसहस्राण्यथ:कुरुतेब्रह्मघातलक्षाणि ।
परमार्थविन्नपुण्यैर्नचपापै:स्पृश्यतेविमल: ॥ ७८ ॥

ब्रह्मज्ञानीहजार अश्वमेधकरै पुण्यकरिके युक्तनहींहोता हजारो ब्राह्मणमारै पापकरिके युक्त नहीं होता सदानिर्मल रहताहै ॥ ७८ ॥

मदकोपहर्षमत्सरविषादभयपरुषवर्ज्यवाक्बुद्धि: ।
निस्तोचवषट्कारोजडवद्विचरेदगाधमति: ॥ ७९ ॥

सो ज्ञानी बड़ा बुद्धिमान् न तो मतवार रहै न रिसकरै न खुसी होय न किसीका द्रोह करै न विषादकरै न डिराय न कड़ी बात कहै नपाठ करै न मंत्र जपै जड़की तरह घूमैं ॥ ७९ ॥

उत्पत्तिनाशवर्जितमेवंपरमार्थमुपलभ्यकृतकृत्य: ।
सफलजन्मासर्वगतस्तिष्ठतियथेष्टम् ॥ ८० ॥

जिसका उत्पत्ति बिनाश नहीं ऐसे परमात्मा को प्राप्त होइके कृतार्थ हो अपना जन्म सुफल करता है स्वेच्छा पूर्वक बसता है ॥ ८० ॥

व्यापिनमभिन्नमित्यंसर्वात्मानंविधूतनानात्वं ।
निरुपमपरमानंदंयोवेदसतन्मयोभवति ॥ ८१ ॥

सबमें व्यापी सबसे भिन्न नहीं सबका आत्मा नांनात्व जिसको नहीं ऐसे परमात्मा को जो जानता है सो परमात्महोजाता है ॥ ८१ ॥

तीर्थेश्वपचगृहेवानष्टस्मृतिरपिपरित्यजन्देहं ।
ज्ञानीसमकालमुक्त:कैवल्यंयातीहविगतशोक: ॥ ८२ ॥

जिसको कुछ सुधि नहीं है ऐसे ज्ञानीका देह तीर्थ में वा डोमके घरमें छूटिजाइ तो केवल ब्रह्म को प्राप्त होय कोई शोक न होय ज्ञान उत्पन्न होते मुक्त हो जाता है ॥ ८२ ॥

पुण्यायतीर्थसेवानिरयायश्वपचनिधनगति: ।
पुण्यायपुण्यफलंयस्यस्पर्शाभावेतुकिमेतेन ॥ ८३ ॥

तीर्थ सेवा से पुण्य होती है स्वपचके घर मरने से नरक होता है जिसको पुण्य वा पाप को स्पर्श नहीं है तो पुण्य पाप का फल स्वर्ग नरक कैसे होय ॥ ८३ ॥

वृक्षाग्राच्च्युतपादोयद्वदनिच्छन्नर:पतति ।
तद्वद्गुणपुरुषज्ञोह्यनिच्छन्नपिकेवलीभवति ॥ ८४ ॥

जैसे वृक्षके ऊपर चढ़ा मनुष्य डारपरफिरते पांउ सकिला भूमिमें गिरि पड़ता है औ गिरने की इच्छा नहीं है तैसेही प्रकृति पुरुष का बिभाग जानने वाला चाहे इच्छा करै चाहे इच्छा न करै केवल ब्रह्मरूप होइ जाइगा ॥ ८४ ॥

परमार्थमार्गसाधनमभ्यस्यप्राप्ययोगमपिनाम ।
सुरलोकभोगभोगीमुदितमनामोदतेसुचिरम् ॥

मोक्ष साधन मार्ग में अभ्यास करिके योग में प्राप्त होइके बहुत दिनतक इंद्र लोकमें भोग कर्ता है और आनंदित होता है ॥ ८५ ॥

विषयेषुसार्वभौम:सर्वजनै:पूज्यतेयथाराजा ।
भुवनेषुसर्वदेवैर्योगभ्रष्टस्तथापूज्य: ॥ ६६ ॥

जैसे अखिल मंडलेश्वर राजा को सब देश बासी पूजते हैं तैसेही योगभ्रष्ट चौदहो भुवन बिषे ये देवता गणहैं ते सब पूजा करते हैं ॥ ८६ ॥

महताकालेनपुमान्मानुष्यंप्राप्ययोगमभ्यस्य ।
प्राप्नोतिदिव्यममृतंयत्तत्परमंपदंविष्णो: ॥ ८७ ॥

वह योग भ्रष्ट बहुत दिन स्वर्ग भोग करिके मनुष्य योनिमें पैदा होइके फिरि योगाभ्यास करिके जो अविनाशी विष्णुपदहै तिस्को प्राप्त होइ जाताहै ॥ ८७ ॥

वेदान्तशास्त्रमखिलं विलोक्य शेषस्तु जगदाधारः ।
आर्य्यापञ्चाशीत्या बबंध परमार्थसारमिदं ॥ ८८ ॥

जगतके धारण कर्ता शेष संपूर्ण वेदांत शास्त्र को देखिके पचासी आर्य्या छंद करिके यह परमार्थसारको प्रबन्ध किया ॥ ८८ ॥

इतियोपरमार्थसार भाषाटीकासहितसम्पूर्णम् ॥
सम्वत् १९३२